भारतीय संस्कृति एवं पर्यटन अध्ययन विभाग में

पी-एच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रारूप

-: विषय :-

'देवात्मा हिमालय के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की तीर्थ परंपरा'

निर्देशिका

प्रो. (डॉ.) ममता भटनागर
विभागाध्यक्षा
भारतीय संस्कृति एवं पर्यटन अध्ययन विभाग
देव संस्कृति विश्वविद्यालय
शांतिकुन्ज-हरिद्वार

शोधकर्ता

गोवर्धन लाल सगीतरा
देव संस्कृति विश्वविद्यालय,
शांतिकुन्ज-हरिद्वार

देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शांतिकुंज-हरिद्वार

2006

" देवात्मा हिमालय के परिप्रेक्ष्य में
भारतीय संस्कृति की तीर्थ परंपरा "

विषय का महत्व:-

विश्व की सबसे प्राचीन भारतीय संस्कृति को वैदिक संस्कति भी कहा जाता है क्योंकि यह अनगढ़ मानव को देव मानव बनाने वाली संजीवनी विद्या है। संस्कृति मानव की मौलिक विशेषता है जो मनुष्य को सच्चे अर्थो में मनुष्य बनाने के गुणों से ओत-प्रोत है। अत: वह कृति जो संस्कार सम्पन्न हो, संस्कृति कहलाती है।मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने का विज्ञान और विधान संस्कृति कहलाता है। इसके दर्शन को अध्यात्म और व्यवहार को धर्म कहतें है। संस्कृति के उन्नयन हेतु अनेक धर्म कृत्यों का सहारा लिया जाता है जिसमें तीर्थ की महत्ता अधिक है। 'तीर्थ' शब्द का अर्थ है पवित्र करने वाला अर्थात् वह माध्यम जिसके द्वारा व्यक्ति परमचेतना को अपने अन्त:करण में धारण अनुभव करता है। परमात्मसत्ता को आत्मसात करने वाले गुणों से ओत प्रोत पुँज को तीर्थ की संज्ञा दी गई है।प्राचीनकाल में ऋषि मनीषियों ने अपने चिन्तन से प्रतिपादित किया कि व्यक्ति की कलुषताओं को दूर करने एवं आत्मिक उत्थान के लिए वातावरण का विशेष प्रभाव पड़ता है इसलिए उन्होने ऋषियों की तपस्थली एवं अवतारों की लीलास्थली को तीर्थो के रूप में घोषित किया है। जिन क्षेत्रों में भगवान के विभिन्न अवतारों के किया-कलाप विशिष्ठ प्रेरणायें प्रस्तुत करते रहे है वहाँ भक्तजनों ने तीर्थो की स्थापना की है। भगवान राम और कृष्ण की लीलाओं का स्मरण दिलाने वाले अनेकों तीर्थ अभी भी उस स्थान पर विध्यमान हैं। इन सब का एक ही उद्देश्य रहा है कि सर्व साधारण को भगवान के अवतारों के प्रयोजनों का परिचय मिलें वे उससे प्रेरणा और प्रकाश पा सकें। इसलीए इन तीर्थो को अवतारों का भावना शरीर कहा जाता है उसी श्रद्धा- भावना से उनके सान्निध्य पाने का प्रयास किया जाता है।

सभी धर्म संप्रदायों में यह प्रथा प्रचलित है कि अपने संस्थापकों की शिक्षा- प्रेरणा को फेलाने के लिए ऐसे केन्द्र बनाये जाते है जहाँ से उस मिशन का भविष्य भी संचालित होता रहे। इस निमित्त युग ऋषि पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य ने तीर्थ परंपरा में नवीनता प्रदान करते हुए युगानुकूल तीर्थ

निमित्त युग ऋषि पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य ने तीर्थ परंपरा में नवीनता प्रदान करते हुए युगानुकूल तीर्थ परम्परा का रूप श्रजित किया । इस तत्वदृष्टा ने इस हेतु गायत्रीतीर्थ शांतिकुन्ज को एक प्रकाश स्त्रोत के रूप में विनिर्मित किया है। यह केन्द्र गंगा की गोद, हिमालय की छाया में इसके प्रवेशद्वार पर सप्तऋषि क्षेत्र में अवस्थित है। यहाँ ऋषि परम्पराओं का सूत्र संचालन अभी भी उसी रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। सप्त ऋषियों में से गायत्री के तत्व द्रष्टा विश्वामित्र ने जहाँ तप किया था, उसी सुसंस्कारित भूमि पर इस आश्रम का निर्माण किया गया है। पुरातनकाल की तीर्थ परम्परा का स्वरूप, उद्देश्य किया-कलाप और प्रभाव परिणाम इस आधार पर प्रस्तुत किया कि पुरातन की झाँकि को नवीन रूप में देखा जा सके। वस्तुतः तीर्थ जिन प्रयोजनों के लिए बने थे उनके पुरातन स्वरूप को चलते हुए यहाँ देखा जा सकता है। हर दिन नियमित गायत्री महापुरूश्चरण, दो घण्टे नौ कुण्ड की यज्ञशाला में अग्निहोत्र, 79 वर्ष से जलता अखण्ड घृत दीप, नियमित रूद्राभिषेक, प्रज्ञापुराण, कथा, कीर्तन जैसे धार्मिक कार्यकम नियमित रूप से चलते है। एक मास में सवालक्ष गायत्री पुरूश्चरण, नौ दिन में 24 हजार अनुष्ठान का कम निरन्तर चलता रहता है। निवास, भोजन आदि की उचित व्यवस्था है हर साधक की शारीरिक, मानसिक स्थिति सुयोग्य डॉक्टरों और बहुमूल्य मशीनों द्वारा जँच कर स्थिति के अनुरूप पृथक-पृथक साधनाएँ बताई जाती है। इस कल्प साधना कम में निरन्तर सैकड़ों व्यक्ति सम्मिलित रहते है। तीर्थसेवन प्रायश्चित, मुडंन, उपनयन, बाल संस्कार, वानप्रस्थ, श्राद्ध- तर्पण आदि की भी व्यवस्था है। व्यक्तिगत समस्याओं के सम्बंध में उपयोगी परामर्श प्राप्त करने की एवं स्वाध्याय, सत्संग की यहाँ समुचित व्यवस्था बनी हुई है।प्राचीनकाल में तीर्थो का निर्माण ऐसे उपयुक्त स्थानों पर किया गया था जहाँ धर्म प्रेमी ऐतिहासिक एवं प्राकृतिक कारणों से सहज ही जा पहुँचे और वहाँ बने हुए आरण्यकों में उपयुक्त सानिध्य प्राप्त करके सर्वतोमुखी प्रगति की प्रेरणा एवं क्षमता प्राप्त कर सकें। यह पूर्व प्रयोजन मध्यकाल में लड़खड़ा गया था। तीर्थो की गरिमा घट जाने से धर्म चेतना के विस्तार में भारी क्षति पहुँची है। उस अभाव की पूर्ति गायत्री तीर्थो के रूपों में बने शक्तिपीठों द्वारा सम्पन्न होने जा रही है।

शोध कार्य का उद्देश्य :-

आत्मवादी तत्वज्ञान को कार्य रूप में परिणित करने के लिए जो धर्म परम्पराएँ प्रचलित हुई है उनमें तीर्थयात्रा को प्रमुखता दी गई है और अतिविस्तार पूर्वक उसका महात्म्य गाया बताया गया है। हर भारतीय धर्मनुयायी के मन में तीर्थयात्रा की उमंग उठती रहती है और जब भी अवसर मिलता है उसके लिए समय और धन लगाने में प्रसन्नता अनुभव करता है। इसी जन आकांक्षा की पूर्ति के लिए अनेकों तीर्थ बने है और उनकी यात्रा के लिए विशेष पर्व, उत्सव, आयोजन एवं मेले होते रहते है। इसी प्रयोजन पर आज भी प्रचुर परिणाम में जनशक्ति, श्रमशक्ति एवं धनशक्ति नियोजित होती रहती है। आज तीर्थयात्रा की लकीर भर पिटती है और चिन्ह पूजा को सब कुछ मानकर श्रम एवं धन की प्रचुर संपदा लगाई जाती है। आवश्यकता इस बात की समझी जा रही है कि विवेकवान व्यक्ति उसका उद्देश्य समझें, दुसरों को समझायें और उसके वास्तविक स्वरूप का जनसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयत्न करें इसके निमित्त इस शोध लेख को प्राथमिकता दी गई है। उपर्युक्त उद्देश्य को निम्न बिन्दुओं की सहायता से प्रस्तुत किया जा रहा है-

- सांस्कृतिक स्तम्भ तीर्थ परम्परा के ऐतिहासिक महत्व को स्पष्ठ करना।
- विभिन्न कालों की तीर्थ परम्परा के स्वरूप का विवेचन प्रस्तुत करना।
- तीर्थस्थलों का मात्र पर्यटन एवं मनोरंजन के स्थलों में परिवर्तित होने की धारणा को नियंत्रित कर तीर्थाटन के वास्तविक स्वरूप को उजागर करना।
- एक समर्थ युगतीर्थ शान्तिकुंज की विवेचनात्मक व्याख्या।
- गायत्रीतीर्थ द्वारा संचालित सामयिक तीर्थ परम्परा का वर्णन प्रस्तुत करना।

शोध का औचित्यः-

मानवी प्रगति और समृद्धि की समस्या को ध्यान में रखते हुए आधार भूत उपाय यह सोचा कि जन मानस को परिष्कृत करने की दूरगामी योजना एवं सुव्यवस्थित अवधारणा बनायी जाये। धर्मधारणा के विशालकाय कलेवर के मूल में यही तथ्य अभिप्रेरित है। पशु प्रवृत्तियों को मानवी संस्कृति में परिणित करने के लिए ही व्यक्ति के स्तर से ताल-मेल रखने वाले धर्मोपचारों का निर्धारण किया गया है। ऋषियों की सारी सूझ-बुझ उसी प्रयोजन में संलग्न रही है उनने जिन प्रथा प्रचलनों का, धर्मानुष्ठानों का, दार्शनिक निर्धारणों का निमार्ण व प्रचलन किया जिनमें मूल उद्देश्य यही रखा कि व्यक्ति का अन्तरंग उच्चस्तरीय बने । तीर्थ परंपरा से जन-जन को अवगत एवं प्रभावित किया जाये एवं शोध द्वारा तीर्थो की महत्ता को ऐसा प्रदर्शित किया जायेगा कि आदर्शवादी आस्थाओं को अपनाने और व्यवहार में उतारने के लिए भी मनुष्य सहमत व प्रेरित कर सके।

व्यक्ति और समाज को समुन्नत बनाने के लिए उच्च स्तरीय आस्था का निर्माण एवं अभिवर्धन अनिवार्य रूप से आवश्यक है। इस पुण्य प्रयोजन के लिए अतीत की तरह वर्तमान में भी गायत्री तीर्थ शांतिकुन्ज अपनी महती भूमिका निभा रहा है और उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

" देवात्मा हिमालय के परिप्रेक्ष्य में
भारतीय संस्कृति की तीर्थ परंपरा "

विषय–प्रवर्तन

अध्याय–1 तीर्थ शब्द की उत्तपत्ति एवं अभिप्राय
तीर्थ की परिभाषा, प्रकार एवं स्वरूप
तीर्थ के उद्देश्य एवं प्रयोजन
भारतीय संस्कृति में तीर्थ की उद्धात अवधारणा

अध्याय–2 प्राचीन भारतीय संस्कृति में तीर्थ परंपरा
वैदिक काल में तीर्थ परंपरा
महाकाव्य काल में तीर्थ परंपरा
पुराण काल में तीर्थ परंपरा

अध्याय–3 भारतीय संस्कृति में तीर्थ परंपरा का प्राचीन स्वरूप
तीर्थयात्रा में पालनीय नियम
तीर्थ के पाप एवं प्राश्चित विधान
तीर्थ श्राद्ध विधि

अध्याय–4 देवात्मा हिमालय एवं उसके तीर्थ
चारों धाम
गंगा का महत्व एवं उसके तीर्थ
उत्तराखण्ड के तीर्थ एवं मेले

अध्याय–5 प्राचीन तीर्थ परंपरा का अभिनव निर्धारण–गायत्रीतीर्थ
गायत्रीतीर्थ–शांतिकुन्ज एवं उसका उद्देश्य
गायत्रीतीर्थ का स्वरूप एवं कार्यक्रम
तीर्थ परंपरा का सामयिक महत्व एवं शक्तिपीठ अभियान

अध्याय–6 उपसंहार

संदर्भ ग्रन्थ सूची

अग्रवाल, पी0के0 - भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, वाराणसी, 2000

अत्रिसंहिता - स्वाध्याय मण्डल, औंध, 1948

अखण्ड ज्योति - मासिक पत्रिका, मथुरा, 1950 से शोध कार्य पूर्ण करने तक

अनन्त, अ0अ0 - भारतीय संस्कृति का विदेशों पर प्रभाव, हि0सा0भ0, लखनउ, 1996

आजेय, बी0 एल0 - भारतीय संस्कृति, दर्शन प्रिन्ट, मुरादाबाद,1968

आनन्दजी कल्याणजी - जैन तीर्थ सर्व संग्रह, पूना, 1953

आल्डेनबर्ग - स्टडी ऑफ पुराणाज, बनारस,1982

आशाशाह - हिमालय दर्शन, लेख, 1983

उपाध्याय, बलदेव - वैदिक साहित्य और संस्कृति, वाराणसी, 1954

उपाध्याय, वी0 एस0 - भारतीय संस्कृति के स्त्रोत, नई दिल्ली,1991

उपाध्याय, वासुदेव - प्राचीन भारतीय स्तूप,गुहा एवं मंदिर, पटना,1972

उपाध्याय, रामजी - भारतीय सस्कृति का उत्थान, इलाहबाद, 1962

एटकिंसन, ई0टी0 - हिमालय गजेटियर, वोलियम-2, दिल्ली, 1982

ओक, पी0 एन0 - विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय, गया, 1983

ऋग्वेद - संपा0, एफ0 मैक्मुकलर, वै0सं0, पूना, 1890

कर्मपुराण - संपा0 राजेन्द्रपाल मित्र, कलकत्ता, 1873

कल्याण तीर्थांक - गीताप्रेस, गोरखपुर, जनवरी, 1957

कौटिल्य, अर्थशास्त्र - संपा0 आर0 भामशास्त्री, मैसूर, 1909

के0 कोहली - द हिमालय, नई दिल्ली, 1998

काणे, पी0 वी0 - पाण्डुरंग, झाँसी, 1966

- धर्म शास्त्र का इतिहास

खण्डुरी, बी0 एम0 - आर्किलोजी ऑफ अनकनन्दावैली,दिल्ली, 1994

गढ़वाल के प्रमुख तीर्थ - गढ़वाल विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1982

चातक, गोविन्द - गढ़वाली लोकगीत, देहरादून, 1956

डबराल, एस0 पी0 - उत्तराखण्डके पशुचारक, दुगड्डा, पौड़ी, 1964

- उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग-2, 1968

दुबे, जगतनारायण - भारतीय संस्कृति में ऋषियों का योगदान, दिल्ली, 1983

द्विवेदी, व्रजवल्लभ - एक विश्व एक संस्कृति, पटना, 2003

जैन, हीरालाल - भारतीय संस्कृति मे जैन धर्म का योगदान, गया, 1962

नैथानी एवं अन्य - उत्तराखण्ड में यवन बस्तियाँ, शोधलेख, 1988

नौटियाल, नवीन - हरिद्वार तर्पण की परम्परा, धर्मयुग, 1978

पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य - तीर्थ सेवन क्यों और कैसे?, मथुरा, 1998

बुधकर, कमलकांत - धर्मयुग, अप्रैल, 1980

बौधायन - चौखम्बा संस्कृति सीरीज, बनारस, 1934

भट्ट, मदनचन्द्र - नन्दादेवी स्मारिका, नैनीताल, 1983-84

महाभारत - गीताप्रेस गोरखपुर, 1882

मिश्र, त्रिनाथ - कुम्भगाथा, इलाहबाद, 2001

मिश्र, जयशंकर - ग्यारहीं सदी का भारत, वारणसी, 1965

मेहरा, सुरेन्द्रसिंह - उ0खण्ड में तीर्थ एवं पर्यटन का विकास,1929

मैक्क्रिण्डल - मेगस्थनीज एवं एरियन, कलकत्ता, 1976

मोतीचन्द्र - प्राचीन भारतीय वेशभूषा, प्रयाग, 1950

यजुर्वेद - दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली, 1956

राय, गोविन्दचन्द्र - प्राचीन भारतीय मिट्टी के बरतन, वाराणसी, 1960

राहुल सांस्कृत्यान - गढ़वाल, इलाहबाद, 1948

लारेन्स - गैटिल्स हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थॉट, पूना, 1984

वृहत्संहिता - संपा0 ऋषिकेश शास्त्री, कलकत्ता, 1993

विष्णु पुराण - वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 1889

स्वामी सोऽहमतीर्थ - हृदय मंथन, भाग-1, दिल्ली, 2001

स्वामी ए0 सी0 प्रभुपाद - श्री ईशोपनिषद, भक्ति वेदान्त बुक, मुंबई,[illegible]

सूर्यकान्त - वैदिक देव शास्त्र, 1961